BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 3, Issue 2, April-June, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

भारत में दलित राजनीति के बदलते आयाम : प्रमुख मुद्दे, चुनौतियां एवं समाधान

मनोज कुमार[1]
शोध छात्र
स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग
बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद
डॉ जितेंद्र आर्यन[2]
सहायक प्राध्यापक
स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग
बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद

शोध सार :
भारत में दलित राजनीति एक लंबा ऐतिहासिक और सामाजिक संघर्ष रहा है, जिसकी जड़ें औपनिवेशिक काल से भी पूर्व की सामाजिक संरचना में देखी जा सकती हैं। पारंपरिक हिंदू समाज में दलित समुदाय को 'अछूत' मानकर सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन के मुख्यधारा से वंचित रखा गया। परंतु 20वीं सदी में डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे नेताओं के नेतृत्व में दलित चेतना ने संगठित रूप लिया और एक सशक्त राजनीतिक आवाज बनी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान द्वारा समानता, सामाजिक न्याय और आरक्षण जैसे प्रावधानों के माध्यम से दलितों को मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया गया। प्रारंभिक दशकों में दलित राजनीति कांग्रेस पार्टी के भीतर सीमित रही, लेकिन 1980 के दशक में दलित संगठनों और क्षेत्रीय दलों जैसे बहुजन समाज पार्टी (बसपा) जैसी राजनीतिक पार्टियों के उदय ने इसे स्वतंत्र राजनीतिक ताकत के रूप में स्थापित किया। समकालीन समय में दलित राजनीति के आयाम व्यापक हुए हैं। अब यह केवल आरक्षण की मांग तक सीमित न रहकर शिक्षा, रोजगार, भूमि अधिकार, सामाजिक सम्मान, और सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व जैसे विषयों को भी समाहित करती है। सोशल मीडिया और सिविल सोसाइटी आंदोलनों ने दलित युवाओं को नई वैचारिक दृष्टि और मंच प्रदान किया है। हालाँकि, आज भी जातीय हिंसा, सामाजिक बहिष्कार और राजनीतिक अवसरवाद जैसे प्रश्न दलित राजनीति के सामने चुनौती बने हुए हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य इन बदलते आयामों और प्रवृत्तियों की गहराई से पड़ताल कर यह समझना है कि दलित राजनीति किस प्रकार भारतीय लोकतंत्र को नया आयाम दे रही है।

कुंजी शब्द : दलित, राजनीति, भारतीय लोकतंत्र, सामाजिक संघर्ष

अध्ययन की पृष्ठभूमि :

राजनीति समाज में सकारात्मक बदलाव लाने का एक प्रभावशाली माध्यम है, क्योंकि यह समाज के नियम नीतियाँ और दिशा तय करती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीति के माध्यम से वंचित, शोषित और पिछड़े वर्गों को प्रतिनिधित्व और अधिकार मिलते हैं। कानून निर्माण, सामाजिक न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य और आर्थिक सुधार जैसे क्षेत्र राजनीतिक इच्छाशक्ति से ही प्रभावित होते हैं। जब राजनीति जनहित और समावेशिता पर केंद्रित होती है, तब यह सामाजिक समानता, जागरूकता और सशक्तिकरण को बढ़ावा देती है। परम्परागत भारतीय सामाजिक संरचना वर्ण व्यवस्था पर आधारित रही है, जिसमें समाज को चार प्रमुख वर्गों- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित किया गया था। दलित वे लोग हैं जिन्हें भारत में ऐतिहासिक रूप से सामाजिक जाति व्यवस्था के सबसे निचले स्तर पर रखा गया है। उन्हें "अछूत" या "दलित" के रूप में जाना जाता है, जिसका अर्थ है "दबाया हुआ"

@2025 Bihar Shodh Samaagam

या "टूटा हुआ।" वर्तमान समय में दलित शब्द एक शक्तिशाली शब्द है जो दलितों के उत्पीड़न और संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है (घोष, 2003)। यह शब्द उन्हें उनकी पहचान और अधिकार की मांग के लिए एक मंच प्रदान करता है। दलित शब्द का आधुनिक राजनीतिक और सामाजिक प्रयोग 20वीं शताब्दी में हुआ। इसका व्यापक प्रचार डॉ. भीमराव अंबेडकर और बाद में दलित पैंथर आंदोलन (1970 के दशक) ने किया। दलित पैंथर ने 'दलित' शब्द को एक सशक्त सामाजिक और राजनीतिक पहचान के रूप में प्रस्तुत किया, जो न केवल शोषण का प्रतीक था, बल्कि प्रतिरोध और आत्मसम्मान का भी प्रतीक बन गया।

भारत में दलित राजनीति के बदलते आयाम :

भारत में दलित राजनीति का उद्भव और विकास सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों का एक जटिल परिणाम है (वाल्ड्रॉप, 2004)। दलित समुदाय, जो भारतीय समाज में ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रहा है, ने अपने अधिकारों और सम्मान के लिए लंबे समय तक संघर्ष किया है। दलित राजनीति का आधार भारतीय समाज की जाति व्यवस्था में निहित है, जहां दलितों को 'अछूत' माना जाता था और उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से दबाया गया। 20वीं शताब्दी में, दलित नेताओं और आंदोलनों ने इस उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाई और एक ऐसी राजनीतिक चेतना का निर्माण किया जो आज भी भारतीय राजनीति को प्रभावित करती है। दलित राजनीति का उद्भव औपनिवेशिक काल में देखा जा सकता है, जब सामाजिक सुधार आंदोलनों और ब्रिटिश नीतियों ने जातिगत भेदभाव को चुनौती देने की प्रक्रिया शुरू की। 19वीं शताब्दी में, ज्योतिबा फुले ने महाराष्ट्र में सत्यशोधक समाज की स्थापना की, जिसका उद्देश्य निम्न जातियों और दलितों के लिए शिक्षा और सामाजिक समानता को बढ़ावा देना था। फुले ने ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती दी और दलितों के लिए एक वैकल्पिक सामाजिक ढांचे की वकालत की।

20वीं शताब्दी की शुरुआत में, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर दलित राजनीति के सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक बनकर उभरे। अम्बेडकर ने दलितों के लिए शिक्षा, सामाजिक समानता और स्वायत्तता पर जोर दिया। उन्होंने 1924 में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य दलितों के सामाजिक और शैक्षिक उत्थान के साथ-साथ उनके राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करना था। 1930 के गोलमेज सम्मेलन में, अम्बेडकर ने दलितों के लिए अलग निर्वाचन मंडल की मांग की, जो दलितों को अपनी राजनीतिक पहचान स्थापित करने का अवसर प्रदान करता। हालांकि, पूना पैक्ट (1932) के तहत यह मांग संयुक्त निर्वाचन मंडल में बदल गई, जिसने दलितों के लिए आरक्षित सीटों की व्यवस्था की। अम्बेडकर ने 1936 में स्वतंत्र मजदूर पार्टी और बाद में 1942 में अखिल भारतीय अनुसूचित जाति महासंघ की स्थापना की। ये संगठन दलितों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को मजबूत करने के लिए बनाए गए थे। अम्बेडकर का मानना था कि दलितों की मुक्ति केवल राजनीतिक शक्ति और कानूनी सुधारों के माध्यम से संभव है। उन्होंने भारतीय संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और दलितों के लिए आरक्षण, सामाजिक न्याय और समानता जैसे प्रावधानों को सुनिश्चित किया।

स्वतंत्रता के बाद, दलित राजनीति ने नए आयाम प्राप्त किए। भारतीय संविधान ने दलितों को अनुसूचित जाति (एससी) के रूप में वर्गीकृत किया और उन्हें शिक्षा, रोजगार और राजनीति में आरक्षण प्रदान किया। अम्बेडकर की रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (आरपीआई) ने 1956 में दलितों के लिए एक मजबूत राजनीतिक मंच प्रदान किया। हालांकि, आरपीआई के भीतर नेतृत्व और विचारधारा को लेकर मतभेदों के कारण यह पार्टी कई धड़ों में बंट गई। 1960 और 1970 के दशक में, दलित पैंथर आंदोलन ने दलित राजनीति को एक नया दिशा दी। महाराष्ट्र में शुरू हुआ यह आंदोलन ब्लैक पैंथर आंदोलन से प्रेरित था और इसने दलित युवाओं को संगठित कर जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक अन्याय के खिलाफ आक्रामक रुख अपनाया। दलित पैंथर ने साहित्य,

कविता और सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से दलित चेतना को बढ़ावा दिया। इस आंदोलन ने दलितों को अपनी पहचान को गर्व के साथ स्वीकार करने और ब्राह्मणवादी संस्कृति का विरोध करने के लिए प्रेरित किया। 1980 के दशक में, कांशीराम ने दलित राजनीति को एक नया मोड़ दिया। उन्होंने 1984 में बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य न केवल दलितों बल्कि अन्य पिछड़े वर्गों (ओबीसी) और अल्पसंख्यकों को एकजुट करना था। बीएसपी ने 'बहुजन' की अवधारणा को लोकप्रिय बनाया, जिसका अर्थ था समाज का बहुसंख्यक हिस्सा जो ऐतिहासिक रूप से शोषित रहा है। कांशीराम और बाद में मायावती के नेतृत्व में, बीएसपी ने उत्तर प्रदेश में महत्वपूर्ण राजनीतिक सफलता हासिल की और कई बार सरकार बनाई। बीएसपी ने दलितों को राजनीतिक शक्ति के केंद्र में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 21वीं सताब्दी में दलित राजनीति ने कई नए आयाम अपनाए हैं। एक ओर, दलित नेताओं और संगठनों ने वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के दौर में नई चुनौतियों का सामना किया है, वहीं दूसरी ओर, सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म ने दलित आवाजों को व्यापक मंच प्रदान किया है।

- **आर्थिक और सामाजिक बदलाव-** वैश्वीकरण और निजीकरण के दौर में, दलित समुदाय के सामने आर्थिक असमानता की नई चुनौतियां उभरी हैं। सरकारी नौकरियों में आरक्षण के बावजूद, निजी क्षेत्र में दलितों का प्रतिनिधित्व सीमित है। इसके जवाब में, दलित उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए कई पहल शुरू की गई हैं, जैसे कि दलित इंडियन चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (डीआईसीसीआई)। यह संगठन दलित युवाओं को व्यवसाय और उद्यमिता के क्षेत्र में प्रोत्साहित करता है, जिससे दलित राजनीति का आर्थिक आयाम और मजबूत हुआ है।
- **सांस्कृतिक और वैचारिक पुनर्जनन-** दलित साहित्य और कला ने दलित राजनीति को एक नई दिशा दी है। लेखक जैसे ओमप्रकाश वाल्मीकि, बामा और शरणकुमार लिंबाले ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित अनुभवों को मुख्यधारा में लाया है। साथ ही, अम्बेडकरवादी विचारधारा और बौद्ध धर्म को अपनाने की प्रक्रिया ने दलितों को एक नई सांस्कृतिक पहचान दी है। बौद्ध धर्म को अपनाना दलितों के लिए न केवल धार्मिक, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक प्रतिरोध का प्रतीक बन गया है।
- **डिजिटल युग और सोशल मीडिया-** सोशल मीडिया ने दलित राजनीति को एक वैश्विक मंच प्रदान किया है। ट्विटर, फेसबुक और अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म पर दलित कार्यकर्ता और बुद्धिजीवी अपनी बात को प्रभावी ढंग से रख रहे हैं। रोहित वेमुला जैसे मामलों ने सोशल मीडिया के माध्यम से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय ध्यान आकर्षित किया, जिससे दलित मुद्दों पर व्यापक बहस शुरू हुई। सोशल मीडिया ने दलित युवाओं को संगठित करने और उनके अधिकारों के लिए आवाज उठाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- **गठबंधन और मुख्यधारा की राजनीति-** दलित राजनीति अब केवल दलित-केंद्रित दलों तक सीमित नहीं है। बीएसपी जैसे दल अन्य राजनीतिक दलों के साथ गठबंधन कर रहे हैं, जिससे दलित मुद्दों को मुख्यधारा की राजनीति में शामिल किया जा रहा है। हालांकि, कुछ आलोचकों का मानना है कि गठबंधन की राजनीति ने दलित राजनीति की स्वायत्तता को कमजोर किया है। फिर भी, मायावती जैसे नेताओं ने दलित हितों को राष्ट्रीय मंच पर रखने में सफलता हासिल की है।
- **भारत में दलित राजनीति के प्रमुख मुद्दे:**

दलित राजनीति का आधार भारतीय समाज की जाति व्यवस्था में निहित है, जो दलित समुदायों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से हाशिए पर रखती है। सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा सामाजिक भेदभाव और जातिगत हिंसा है, जो आज भी ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में प्रचलित है (गोरिंज, 2013)। दलितों के खिलाफ अत्याचार, जैसे कि सामाजिक बहिष्कार, बलात्कार, और

हत्या, नियमित रूप से समाचारों में आते हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आंकड़ों के अनुसार, 2021 में अनुसूचित जातियों के खिलाफ 50,000 से अधिक अपराध दर्ज किए गए, जो इस समस्या की गंभीरता को दर्शाता है। दूसरा प्रमुख मुद्दा आर्थिक असमानता है। वैश्वीकरण और निजीकरण के दौर में, सरकारी नौकरियों में आरक्षण के बावजूद, निजी क्षेत्र में दलितों का प्रतिनिधित्व नगण्य है। शिक्षा तक सीमित पहुंच और उच्च बेरोजगारी दर दलित युवाओं को आर्थिक रूप से कमजोर बनाती है। तीसरा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व का मुद्दा भी महत्वपूर्ण है। हालांकि संविधान ने दलितों के लिए आरक्षित सीटें सुनिश्चित की हैं, लेकिन मुख्यधारा के राजनीतिक दलों में दलित नेतृत्व को शीर्ष स्तर पर कम ही देखा जाता है। बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) जैसे दलित-केंद्रित दलों का प्रभाव भी क्षेत्रीय स्तर तक सीमित हो गया है, जिससे दलितों की राजनीतिक आवाज कमजोर पड़ रही है। इसके अलावा, दलित महिलाओं के सामने दोहरा उत्पीड़न (जाति और लिंग आधारित) एक और जटिल मुद्दा है, जो दलित राजनीति को और अधिक समावेशी बनाने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

- **भारत में दलित राजनीति की चुनौतियां:**

दलित राजनीति को कई गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जो इसके प्रभाव को सीमित करती हैं। पहली बड़ी चुनौती दलित आंदोलन की आंतरिक विभाजनकारी प्रवृत्ति है (मुथुक्करुप्पन, 2014)। ऐतिहासिक रूप से, दलित संगठनों और दलों, जैसे कि रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (आरपीआई) और बीएसपी, में नेतृत्व और विचारधारा को लेकर मतभेद रहे हैं। इन मतभेदों ने दलित समुदाय को एकजुट करने की प्रक्रिया को कमजोर किया है। दूसरी चुनौती मुख्यधारा की राजनीति में सह-उपभोग की है। कई मुख्यधारा के दल दलित नेताओं को अपनी पार्टी में शामिल करते हैं, लेकिन उन्हें प्रतीकात्मक भूमिकाएं देकर उनकी आवाज को दबा देते हैं। उदाहरण के लिए, दलित नेताओं को अक्सर केवल दलित मतदाताओं को आकर्षित करने के लिए उपयोग किया जाता है, न कि नीति-निर्माण में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए। तीसरी चुनौती वैश्वीकरण और नव-उदारवादी नीतियों से उत्पन्न हो रही है, जो दलित समुदाय की आर्थिक स्थिति को और कमजोर कर रही हैं। निजी क्षेत्र में आरक्षण की अनुपस्थिति और सरकारी नौकरियों में कमी ने दलितों के लिए आर्थिक अवसरों को सीमित कर दिया है। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया के युग में, दलित कार्यकर्ताओं को ऑनलाइन उत्पीड़न और ट्रोलिंग का सामना करना पड़ता है, जो उनकी आवाज को दबाने का एक नया तरीका है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां दलित आबादी का बड़ा हिस्सा रहता है, सामंती मानसिकता और जातिगत वर्चस्व अभी भी मजबूत है, जिससे दलितों के लिए सामाजिक और राजनीतिक गतिशीलता प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। दलित महिलाओं की स्थिति विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि उन्हें जाति, लिंग और वर्ग आधारित उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है, और दलित राजनीति में उनकी आवाज को अभी तक पूरी तरह से मुख्यधारा में नहीं लाया गया है।

- **भारत में दलित राजनीति हेतु सुझाव:**

दलित राजनीति की चुनौतियों का सामना करने के लिए बहुआयामी समाधान अपनाने की आवश्यकता है। सबसे पहले, दलित समुदाय को एकजुट करने के लिए एक समन्वित रणनीति बनानी होगी। इसके लिए, विभिन्न दलित संगठनों और नेताओं को आपसी मतभेदों को दरकिनार कर एक साझा मंच पर काम करना चाहिए (मुथैया, 2004)। अम्बेडकरवादी विचारधारा और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को केंद्र में रखकर एक राष्ट्रीय स्तर का दलित आंदोलन शुरू किया जा सकता है, जो दलितों के साथ-साथ अन्य हाशिए के समुदायों को भी शामिल करे। दूसरा, आर्थिक सशक्तिकरण पर विशेष ध्यान देना होगा। सरकार को निजी क्षेत्र में आरक्षण लागू करने की नीति पर विचार करना चाहिए, साथ ही दलित उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए योजनाएं शुरू करनी चाहिए। दलित इंडियन चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (डीआईसीसीआई) जैसे संगठनों को और अधिक संसाधन और

समर्थन प्रदान किया जाना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में, दलित छात्रों के लिए मुफ्त और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए स्कॉलरशिप और विशेष कोचिंग कार्यक्रम शुरू किए जा सकते हैं। तीसरा, डिजिटल और सांस्कृतिक क्षेत्रों में दलित आवाजों को और मजबूत करना होगा। सोशल मीडिया पर दलित कार्यकर्ताओं के लिए सुरक्षित मंच प्रदान करने और ऑनलाइन उत्पीड़न के खिलाफ सख्त कानूनी कार्रवाई करने की आवश्यकता है। साथ ही, दलित साहित्य, कला और सांस्कृतिक गतिविधियों को मुख्यधारा में लाने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों को प्रोत्साहित करना चाहिए। दलित महिलाओं के मुद्दों को विशेष रूप से संबोधित करने के लिए, दलित राजनीति में उनकी भागीदारी को बढ़ाने और लिंग-संवेदनशील नीतियां लागू करने की आवश्यकता है। इसके अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए, जो जातिगत भेदभाव को कम करने और दलितों के अधिकारों के प्रति लोगों को शिक्षित करने पर केंद्रित हों। कानून प्रवर्तन एजेंसियों को दलितों के खिलाफ अत्याचारों के मामलों में त्वरित और निष्पक्ष कार्रवाई करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। अंत में, दलित राजनीति को मुख्यधारा की राजनीति में प्रभावी ढंग से शामिल करने के लिए, गठबंधन की रणनीति को और मजबूत करना होगा, लेकिन यह सुनिश्चित करना होगा कि दलित हितों को कभी भी समझौता न करना पड़े।

निष्कर्ष :

दलित राजनीति के सामने आने वाले प्रमुख मुद्दे, जैसे कि सामाजिक भेदभाव, आर्थिक असमानता और सीमित राजनीतिक प्रतिनिधित्व, भारतीय समाज की जटिल संरचना को दर्शाते हैं। इन मुद्दों से उत्पन्न होने वाली चुनौतियां, जैसे कि आंतरिक विभाजन, मुख्यधारा की राजनीति में सह-उपभोग, और वैश्वीकरण के प्रभाव, दलित आंदोलन की प्रगति को बाधित करती हैं। हालांकि, एकजुटता, आर्थिक सशक्तिकरण, डिजिटल और सांस्कृतिक सक्रियता, और समावेशी नीतियों के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान संभव है। दलित राजनीति का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि यह कितनी प्रभावी ढंग से सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिवर्तनों को आत्मसात कर सकती है और एक समावेशी, न्यायपूर्ण समाज की दिशा में काम कर सकती है। इन समाधानों को लागू करने के लिए सरकार, नागरिक समाज और दलित समुदाय को मिलकर काम करना होगा, ताकि दलितों के लिए वास्तविक समानता और सम्मान सुनिश्चित किया जा सके।

संदर्भ सूची :

1. गोरिंज, एच. (2013). दलित पॉलिटिक्स: अंटचेबिलिटी, आइडेंटिटी, एंड असेर्शन. *इन रूटलेज हैंडबुक ऑफ इंडियन पॉलिटिक्स*, रूटलेज, 119-128.
2. घोष, एस. (2003). द दलित इन इंडिया. *सोशल रिसर्च: एन इंटरनेशनल क्वार्टरली*, 70(1), 83-109.
3. मुथुक्करुप्पन, पी. (2014). दलित: द मेकिंग ऑफ अ पॉलिटिकल सब्जेक्ट. *क्रिटिकल क्वार्टरली*, 56(3), 34-45.
4. मुथैया, पी. (2004). पॉलिटिक्स ऑफ दलित आइडेंटिटी. *द इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस*, 385-402.
5. वाल्ड्रॉप, ए. (2004, दिसंबर). दलित पॉलिटिक्स इन इंडिया एंड न्यू मीनिंग ऑफ कास्ट. *इन फोरम फॉर डेवलपमेंट स्टडीज*, 31(2), टेलर एंड फ्रांसिस ग्रुप, 275-305.